अर्थ— साता वेदनीय आदि शुभ प्रकृतियों का अनुभाग-बंध विशुद्ध परिणामों से उत्कृष्ट होता है।

असाता वेदनीय आदि अशुभ प्रकृतियों का अनुभाग-बंध संक्लेश परिणामों से उत्कृष्ट होता है।

विपरीत परिणामों से जघन्य अनुभाग-बंध होता है। अर्थात् शुभ प्रकृतियों का संक्लेश परिणामों से और अशुभ प्रकृतियों का विशुद्ध परिणामों से जघन्य अनुभाग-बंध होता है।

इस प्रकार सब प्रकृतियों का अनुभाग-बंध जानना।
कर्मों के फलदान शक्ति को अनुभाग कहते हैं ।
<table>
<thead>
<tr>
<th>शुभ प्रकृतियाँ</th>
<th>उत्कृष्ट अनुभाग-बंध</th>
<th>जधन्य अनुभाग-बंध</th>
</tr>
</thead>
<tbody>
<tr>
<td>विशुद्ध परिणाम द्वारा</td>
<td>संक्लेश परिणाम द्वारा</td>
<td></td>
</tr>
<tr>
<td>अशुभ प्रकृतियाँ</td>
<td>संक्लेश परिणाम द्वारा</td>
<td>विशुद्ध परिणाम द्वारा</td>
</tr>
<tr>
<td>मंद कषायरूप परिणाम</td>
<td>• विशुद्ध परिणाम</td>
<td></td>
</tr>
<tr>
<td>तीव्र कषायरूप परिणाम</td>
<td>• संक्लेश परिणाम</td>
<td></td>
</tr>
</tbody>
</table>
बादालं तु पसत्था, विसोहिगुणमुक्कडस्स तिन्वाओः
बासीदि अप्पसत्था, मिच्छुक्कडसिकिलितूस्स || 164 ||

अर्थ— पहले कही गई जो 42 पुण्य प्रकृतियाँ हैं उनका उत्कृष्ट अनुभाग-बंध विशुद्धतारूप गुण की उत्कृष्टता वाले जीव के होता है।

असातादिक 82 अशुभ प्रकृतियाँ उत्कृष्ट संक्लेश परिणाम वाले मिथ्यादृष्टि जीव के उत्कृष्ट अनुभाग सहित बंधती हैं || 164 ||
बंध-योग्य प्रकृतियाँ
(120 + 4 = 124)

वर्णादि-4 प्रकृतियाँ प्रशस्त और अप्रशस्त दो बार गिनी हैं

42 प्रशस्त प्रकृतियाँ
विशुद्धता की उत्कृष्टता से उत्कृष्ट अनुभाग-बंध

82 अप्रशस्त प्रकृतियाँ
उत्कृष्ट संक्लेश से मिथ्यादृष्टि जीव को उत्कृष्ट अनुभाग-बंध
आदाओ उज्जोो, मणवतिरिक्काउगं पसत्थासु।
मिच्छस्स होंति तिव्वा, सम्माइटिस्स सेसाओ।॥ 165 ॥

अर्थ—उन 42 प्रशस्त प्रकृतियों में से आतप, उद्योत,
मनुष्यायु और तिर्यंचयु — इन चार का उत्कृष्ट अनुभाग-बंध
विशुद्ध मिथ्यादृष्टि के होता है।

शेष 38 प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभाग-बंध विशुद्ध सम्यग्दृष्टि
के होता है।॥ 165 ॥
प्रशस्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभाग-बंध के स्वामी

<table>
<thead>
<tr>
<th>प्रकृति</th>
<th>स्वामी</th>
<th>कारण</th>
</tr>
</thead>
<tbody>
<tr>
<td>आतप, उद्धोत</td>
<td>मिथ्यादृष्टि जीव</td>
<td>क्योंकि आतप का बंध प्रथम गुणस्थान में ही होता है, तथा उद्धोत का बंध सासादन तक ही होता है। अतः इनका उत्कृष्ट बंध इन्हीं दो में पाया जायेगा।</td>
</tr>
<tr>
<td>मनुष्यायु, तिरंचायु</td>
<td>मिथ्यादृष्टि जीव</td>
<td>क्योंकि उत्कृष्ट अनुभाग वाली मनुष्य, तिरंच आयु भोगभूमि संबंधी है तथा भोगभूमि संबंधी मनुष्य, तिरंच आयु का बंध मिथ्यादृष्टि मनुष्य, तिरंच ही करते हैं, सम्यगदृष्टि नहीं।</td>
</tr>
<tr>
<td>शेष 38</td>
<td>विशुद्ध सम्यगदृष्टि</td>
<td>क्योंकि सम्यगदृष्टि के विशुद्धि अधिक होने से इनका उत्कृष्ट अनुभाग-बंध पाया जा सकेगा।</td>
</tr>
</tbody>
</table>
मणुओरालदुवरज्ञं, विसुद्धसुरुणिरयाविरदे तिव्वा ।
देवाउ अप्पमते, खवगे अवसेसबत्तीसा ॥ 166 ॥

अर्थ—सम्यगदृष्टि की 38 प्रकृतियों में से मनुष्य-2,
औदारिक-2 और वज्रऋषभमाराचसंहनन—इन पाँचों का
उत्कृष्ट अनुभाग-बंध विशुद्ध देव और नारकी असंयत
सम्यगदृष्टि करता है ।

dेवायु को अप्रभतसंयत गुणस्थान वाला उत्कृष्ट अनुभागसहित
बांधता है ।

बाकी 32 प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभाग-बंध क्षपकश्रेणी वाले
जीव के होता है ॥ 166 ॥
शेष 38 प्रशस्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभाग-बंध के स्वामी

<table>
<thead>
<tr>
<th>प्रकृति</th>
<th>स्वामी</th>
</tr>
</thead>
<tbody>
<tr>
<td>मनुष्य-2 औदारिक-2 वज्रऋषभनाराच</td>
<td>विशुद्ध देव-नारकी सम्यंग्लिष्टि जो अनंतानुवंधी की विसंयोजना के अन्तिम समयवर्ती हैं क्योंकि वहां पर देव-नारकी को सर्वाधिक विशुद्धि पायी जाती है।</td>
</tr>
<tr>
<td>देवायु</td>
<td>अप्रमत् गुणस्थानवर्ती</td>
</tr>
<tr>
<td>शेष 32</td>
<td>क्षपक श्रेणी वाला जीव। 6 प्रकृतियों का उत्कृष्ट बंध पूर्व के गुणस्थानों में कहा क्योंकि क्षपक जीव के इन 6 प्रकृतियों का बंध पाया नहीं जाता।</td>
</tr>
</tbody>
</table>
उवघादहीणतीसे, अपुव्वकरणस्स उच्चजससादे। सम्मेलिदे हवंति हु, खवगस्सवसेसबत्तीसा। || 167 ||

अर्थ— अपूर्वकरण के छठे भाग की 30 व्युच्छित्रि प्रकृतियों में एक उपघात प्रकृति को छोड़ बाकी 29 प्रकृतियाँ और
उच्च गोत्र, यशस्कीर्ति, सातावेदनीय ये 3
इस प्रकार सब 29 + 3 = 32 प्रकृतियाँ क्षपक्षन्हेनी वाले के पूर्व गाथा में कही थीं सो जानना। || 167 ||
शेष 32 प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभाग-बंध के स्वामी

<table>
<thead>
<tr>
<th>प्रकृति</th>
<th>स्वामी</th>
</tr>
</thead>
<tbody>
<tr>
<td>नामकर्म की 29 प्रकृतियाँ जो अपूर्वकरण में व्युच्छिन्न होती हैं (30 – उपघात)</td>
<td>अपूर्वकरण के छठे भाग के अंतिम समयवर्ती क्षपक</td>
</tr>
<tr>
<td>सातावेदनीय उच्च गोत्र</td>
<td>अंतिम समयवर्ती सूक्ष्मसांपराय क्षपक</td>
</tr>
<tr>
<td>यश: कीर्ति</td>
<td></td>
</tr>
</tbody>
</table>
अर्थ— मिथ्यात्व गुणस्थान की व्युक्तित्व प्रकृतियों में से अंत की सूक्ष्मादि 9 प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभाग-बंध संकल्प परिणाम वाले मिथ्यादृष्टि मनुष्य वा तिर्यंच करते हैं।

विशुद्ध परिणाम वाले मिथ्यादृष्टि मनुष्य वा तिर्यंच मनुष्यायु, तिर्यंचायु के उत्कृष्ट अनुभाग को बांधते हैं।

अपनी आयु के छह महीने बाकी रहने पर मिथ्यादृष्टि देव संकल्प परिणामों से एकेन्द्री और स्थायर प्रकृति का और विशुद्ध परिणामों से आतप प्रकृति का उत्कृष्ट अनुभाग बांधते हैं।

॥ १६८ ॥
<table>
<thead>
<tr>
<th>प्रकृति</th>
<th>रवामी</th>
</tr>
</thead>
<tbody>
<tr>
<td>सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण विकल्प</td>
<td>संक्लिष्ट मिथ्यादृष्टि मनुष्य, तिर्यंच क्योंकि पाप प्रकृतियाँ संकल्प परिणामों से उत्कृष्ट अनुभाग संकल्प है (एकेक्रिय अनुभाग)</td>
</tr>
<tr>
<td>नरक-2, मनुष्य, तिर्यंच, विशुद्ध प्राप्ति</td>
<td>अपनी आयु के 6 माह शेष रहने पर विशुद्ध मिथ्यादृष्टि देव</td>
</tr>
<tr>
<td>मनुष्य, तिर्यंच, आतप</td>
<td>विशुद्ध परिणामों मिथ्यादृष्टि मनुष्य, तिर्यंच</td>
</tr>
<tr>
<td>आतप</td>
<td></td>
</tr>
</tbody>
</table>

* मनुष्य, तिर्यंच, आतप — ये प्रशस्त प्रकृतियाँ हैं।
उज्जोबो तमतमगे, सुरणार्यमिच्छुगे असंपत्।
तिरियदुः सेसा पुण, चउगौदिमिच्छे किलिष्ठे य। || 169 ||

अर्थ— सातवें तमस्तमक नामा नरक में उपशम सम्यक्त के सम्मुख हुआ विशुद्ध मिथ्यादृष्टि नारकी जीव उद्धोत प्रकृति का, और

मिथ्यादृष्टि देव व नारकी असंप्राप्तसुपारिका संहनन, तिर्यंच गति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वीं — इन तीनों का उत्कृष्ट अनुभाग बाँधते हैं।

बाकी रही ६८ प्रकृतियों को चारों गति के संक्लेश परिणाम वाले मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट अनुभागसहित बाँधते हैं। || 169 ||
अप्रशस्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभाग-बंध के स्वामी

<table>
<thead>
<tr>
<th>प्रकृति</th>
<th>स्वामी</th>
</tr>
</thead>
<tbody>
<tr>
<td>उद्धोत</td>
<td>उपशम सम्यकत्व के सम्मुख सप्तम पृथ्वी का विशुद्ध नारकी क्योंकि संमयग्रस्ति के उद्धोत का बंध नहीं होता ।</td>
</tr>
<tr>
<td>असंप्राप्तासृपाटिका, निर्यंच-2</td>
<td>संक्रिष्ट मिथ्यादृष्टि देव, नारकी</td>
</tr>
<tr>
<td>शेष 68 प्रकृतियाँ</td>
<td>चारों गति के संक्रिष्ट मिथ्यादृष्टि जीव</td>
</tr>
</tbody>
</table>

* उद्धोत प्रशस्त प्रकृति है ।
वणचउककमसत्थं, उवचादो खवगघादि पणवीसं ।
तीसाणमवरबंधो, सगसगवोच्चुदेदठाणम्हि ॥ 170 ॥

अर्थ— अशुभ वणादि चार तथा उपघात और क्षय होने वाली घातिया कर्मां की पच्चीस अर्थात् ज्ञानावरण 5, अंतराय 5, दर्शनावरण 4, निद्रा, प्रचला, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, संज्वलन 4 — इन सब 30 प्रकृतियों का अपनी-अपनी बंध-व्युच्चित्रति के स्थान पर जघन्य अनुभाग-बंध होता है ॥ 170 ॥
<table>
<thead>
<tr>
<th>प्रकृति</th>
<th>स्वामी</th>
</tr>
</thead>
<tbody>
<tr>
<td>निद्रा-प्रचला</td>
<td>अपूर्वकरण क्षपक के बंध-व्युट्चिथि के समय</td>
</tr>
<tr>
<td>अप्रशस्त वर्णादि - 4, उपघात</td>
<td>अपूर्वकरण क्षपक के बंध-व्युट्चिथि के समय</td>
</tr>
<tr>
<td>हास्यादि - 4</td>
<td>अपूर्वकरण क्षपक के बंध-व्युट्चिथि के समय</td>
</tr>
<tr>
<td>पुरुषवेद</td>
<td>अनिवृत्तिकरण क्षपक के बंध-व्युट्चिथि के समय</td>
</tr>
<tr>
<td>संज्वलन - 4</td>
<td>अनिवृत्तिकरण क्षपक के बंध-व्युट्चिथि के समय</td>
</tr>
<tr>
<td>ज्ञानावरण - 5</td>
<td>ज्ञानावरण - 5</td>
</tr>
<tr>
<td>दर्शनावरण - 4</td>
<td>दर्शनावरण - 4</td>
</tr>
<tr>
<td>अंतराय - 5</td>
<td>अंतराय - 5</td>
</tr>
<tr>
<td>सूक्ष्मसांपराय क्षपक के बंध-व्युट्चिथि के समय</td>
<td>sूक्ष्मसांपराय क्षपक के बंध-व्युट्चिथि के समय</td>
</tr>
</tbody>
</table>
अणथीणतियं मिच्छूं, मिच्छूं अयदे हूँ बिदियकोठाडी।
दे से तदियकसाया, संजमगुणपच्छिदें सोलं। || 171 ||

अर्थ— अनतानुबंधी कषाय-4, स्त्यानगृढादिक-3 और मिथ्याल्व— ये आठ मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में,
दूसरी अप्रत्याख्यान कषाय-4 असंयत गुणस्थान में,
तीसरी प्रत्याख्यान कषाय-4 देशसंयत गुणस्थान में,
इन 16 प्रकृतियाँ को इन गुणस्थानों में जो संयमगुण के धारणे को सम्मुख हुआ है ऐसा विशुद्ध परिणाम वाला जीव
जघन्य अनुभागसहित बाँधक है। || 171 ||
16 प्रकृतियों के जघन्य अनुभाग-बंध के स्वामी

<table>
<thead>
<tr>
<th>प्रकृति</th>
<th>स्वामी</th>
<th>विशेष</th>
</tr>
</thead>
<tbody>
<tr>
<td>अनंतानुबंध-4, स्त्यानगृह्दि-3, मिथ्यात्व</td>
<td>मिथ्यादृष्टि</td>
<td>जो संयम प्राप्त करने के समस्याओं से स्वतंत्र है एवं सत्तम सम्पदा को प्राप्त करने वाला है, ऐसा मनुष्य</td>
</tr>
<tr>
<td>अप्रत्याख्यान-4</td>
<td>अविरत सम्यगदृष्टि</td>
<td></td>
</tr>
<tr>
<td>प्रत्याख्यान-4</td>
<td>देशसंयत</td>
<td></td>
</tr>
</tbody>
</table>

अनंतानुबंध-4 और स्त्यानगृह्दि-3 यद्यपि सासादन में भी बंधती है, तथापि वहाँ संक्लेश परिणाम होने के कारण उनका जघन्य बंध नहीं होता।

मिथ्यात्व से सप्तम गुणस्थान प्राप्त करने की विशुद्धि से अविरत सम्यक्त्व से सप्तम गुणस्थान प्राप्त करने की विशुद्धि अधिक है।
आहारमणमत्रे, पमतसुद्धे य अरदिसोगानं।
परतिरिये सुहृततियं, वियलं वेगुव्वछ्छक्काओ। ★ 172 ★

अर्थ— आहारक-2 प्रमत्त गुणस्थान के सम्मुख हुए संक्लेशपरिणाम वाले अप्रमत्त गुणस्थानवाले के तथा
अरति, शोक अप्रमत्त गुणस्थान के सम्मुख हुए विशुद्ध प्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीव के जघन्य अनुभागसहित बंधती हैं।
सूक्ष्मादि तीन, विकलेन्द्रिय तीन, वैक्रियिक-षट्क और 4 आयु— ये सोलह प्रकृतियाँ मनुष्य अथवा तिर्यं जघन्य अनुभागसहित बंधती हैं। ★ 172 ★
## 20 प्रकृतियों के जघन्य अनुभाग-बंध के स्वामी

<table>
<thead>
<tr>
<th>प्रकृति</th>
<th>स्वामी</th>
</tr>
</thead>
<tbody>
<tr>
<td>आहारक-2</td>
<td>प्रमत्तसंयत गुणस्थान के सम्मुख हुआ संक्लेशों अप्रमत्तसंयत</td>
</tr>
<tr>
<td>अरति, शोक</td>
<td>अप्रमत्तसंयत गुणस्थान के सम्मुख हुआ विशुद्ध प्रमत्तसंयत</td>
</tr>
<tr>
<td>सूक्ष्म-3, विकल्पना</td>
<td>मिथ्यादृष्टि मनुष्य, तिर्यंच</td>
</tr>
<tr>
<td>वैक्रियिक-6</td>
<td></td>
</tr>
<tr>
<td>आयु-4</td>
<td></td>
</tr>
</tbody>
</table>
सूरणिये उज्जोवोरालदुगं तमतमम्हि तिरियदुगं।
णीचं च तिगतिमज्ञिज्ञाम-परिणामे थावरेयक्खं
॥ १७३ ॥

अर्थ— उद्योग, ओदारिक-द्रविक — ये तीन देव और नारकी के,
सातवें तमस्तमक नरक में विशुद्ध नारकी के तिर्यगति-द्रविक
tथा नीचगृह ये तीन और
स्थायर, एकेन्द्री ये दो प्रकृतियाँ नारकी के बिना तीन गति
वाले तीव्र विशुद्धि और संक्लेश से रहित मध्यमपरिणामी जीवों
के जधन्य अनुभागसहित बंधती हैं ॥ १७३ ॥
### 8 प्रकृतियों के जघन्य अनुभाग-बंध के स्वामी

<table>
<thead>
<tr>
<th>प्रकृति</th>
<th>स्वामी</th>
</tr>
</thead>
<tbody>
<tr>
<td>उद्धोत, औदारिक-2</td>
<td>संक्लिष्ट मिथ्यादृष्टि देव, नारकी</td>
</tr>
<tr>
<td>तिर्यंच-2, नीचगोत्र</td>
<td>उपशम सम्यक्त्व के सम्मुख सप्तम पृथ्वी का विशुद्ध नारकी</td>
</tr>
<tr>
<td>स्थावर, एकेन्द्रिय</td>
<td>मध्यम परिणामी तिर्यंच, मनुष्य, देव</td>
</tr>
</tbody>
</table>
सोहम्मोति य तावं, तिथियरं अविरदे मणुस्समिः।
चदुगदिवामकिलिश्वे, पण्णरस दुवे विसोहीये॥ १७४ ॥

अर्थ— भवनत्रिक से लेकर सौधर्मद्विक तक के संक्लेश
परिणामी देवों के आतप प्रकृति,
नरक जाने को सम्पूर्ण हुए अविरत गुणस्थानवर्ती मनुष्य के
तीर्थकर प्रकृति,
चारों गति के संक्लेश परिणामी मिथ्यादृष्टि जीवों के १५
प्रकृतियाँ और
चारों गति के विश्वास परिणामी जीवों के दो प्रकृतियाँ, जघन्य
अनुभाग सहित बंधती हैं ॥ १७४ ॥
<table>
<thead>
<tr>
<th>प्रकृति</th>
<th>स्वामी</th>
</tr>
</thead>
<tbody>
<tr>
<td>आतप</td>
<td>संक्लिष्ट भवनत्रिक, सौधर्म-2 देव</td>
</tr>
<tr>
<td>तीर्थकर</td>
<td>नरक जाने को सम्मुख असंयत सम्यगदृष्टि मनुष्य</td>
</tr>
<tr>
<td>15 प्रशस्त प्रकृतियाँ</td>
<td>चारों गति के संक्लिष्ट मिथ्यादृष्टि</td>
</tr>
<tr>
<td>2 अप्रशस्त प्रकृतियाँ</td>
<td>चारों गति के विशुद्ध मिथ्यादृष्टि</td>
</tr>
</tbody>
</table>
परघाददुंग तेजदु तसवणचउक्क णिमिणपंचिंदी।
अगुरुलघुं च किलिट्टे, इत्थिणउंसं विसोहोये। 175

≈अर्थ— परघात, उच्छवास, तेजसद्विक, त्रसादि चार, शुभ
वणादि चार, निर्माण, पंचेन्द्रि और अगुरुलघु — ये 15
संक्लेशपरिणामी जीव की तथा

≈स्त्रीवेदू, नपुंसकवेद — ये दो विशुद्धपरिणामी जीव की
प्रकृतियाँ जानना। 175

॥ ॥
<table>
<thead>
<tr>
<th>प्रकृति</th>
<th>स्वामी</th>
</tr>
</thead>
<tbody>
<tr>
<td>परघाट-उच्चवास, तैजस-2, त्रस-4, प्रशस्त वर्ण-4, निर्माण, पंचेन्द्रिय जाति, अगुरुलघु नपुंसक वेद, स्त्री वेद</td>
<td>संक्लिष्ट चतुर्गति के जीव</td>
</tr>
<tr>
<td></td>
<td>चतुर्गति के विशुद्ध जीव</td>
</tr>
</tbody>
</table>
सम्मो वा मिच्छो वा, अदु अपरियुक्तमम्ज्ञामो य जदि ।
परिवर्तमाणमम्ज्ञाम-मिच्छाइद्धिः दु तेवीसं || 176 ||

अर्थ— आगे की गाथा में जो 31 प्रकृति कहेंगे, उनमें से पहली आठ प्रकृतियों को अपरिवर्तमान मध्यमपरिणाम वाला सम्यगद्धि अथवा मिथ्याद्धि जीव जघन्य अनुभाग सहित बाँधता है ।

शेष 23 प्रकृतियों को परिवर्तमान मध्यमपरिणामी मिथ्याद्धि जीव ही जघन्य अनुभागसहित बाँधता है || 176 ||
अपरिवर्त्तमान परिणाम

प्रत्येक समय में जो विशुद्ध या संक्लेश परिणाम बढ़ते या घटते ही जायें उन्हें अपरिवर्त्तमान परिणाम कहते हैं।

विशुद्ध परिणाम (बढ़ते ही जाएँ) → विशुद्ध परिणाम घटते ही जाएँ ←

ऐसे ही संक्लेश परिणाम पर भी लगाना।
परिवर्तमान परिणाम

1 समय 2 समय

विशुद्ध परिणाम

3 समय

1 समय 2 समय

जिस परिणाम को प्राप्त होकर अन्य परिणाम प्राप्त किया,

पुन: अगले समय में प्रथम समय वाला ही परिणाम प्राप्त करना संभव हो,

• ऐसे ही संक्लेश भावों पर भी लगाना।

• ये परिणाम भी जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट; ऐसे 3 प्रकार के हैं।

• उनमें मध्यम परिणामों के द्वारा जघन्य बंध होता है, जघन्य या उत्कृष्ट के द्वारा नहीं।
31 प्रकृतियों के
जघन्य अनुभाग-बंध के स्वामी

<table>
<thead>
<tr>
<th>प्रकृति</th>
<th>स्वामी</th>
</tr>
</thead>
<tbody>
<tr>
<td>8 प्रकृतियाँ</td>
<td>अपरिवर्त्तमान मध्यम परिणामी सम्यग्दशष्टि अथवा मिथ्यादशष्टि</td>
</tr>
<tr>
<td>शेष 23 प्रकृतियाँ</td>
<td>परिवर्त्तमान मध्यम परिणामी मिथ्यादशष्टि</td>
</tr>
</tbody>
</table>
थिरसुहजससाददुगं उभये मिच्छेव उच्चसंठाणं।
संहदिगमणं परसुरसुभगादेज्ज्ञाण जुम्मं च। ॥ 177 ॥

अर्थ—स्थिर, शुभ, यशस्कीर्ति, सातावेदनीय—इन चारों का जोड़ा अर्थात् स्थिर-अस्थिरादि आठ प्रकृतियों सम्यग्रस्थि और मिथ्यादृष्टि इन दोनों के जगन्य अनुभाग सहित बंधती है और
उच्च गोत्र, 6 संस्थान, 6 संहनन, विहायोगति का जोड़ा,
तथा मनुष्यगति-स्वर-सुभग-आदेय इन चारों का जोड़ा, सब मिलकर 23 प्रकृतियों का जगन्य अनुभाग-बंध मिथ्यादृष्टि के ही होता है। ॥ 177 ॥
जघन्य अनुभाग-बंध — 31 प्रकृतियाँ

<table>
<thead>
<tr>
<th>8 प्रकृतियाँ (सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि)</th>
</tr>
</thead>
<tbody>
<tr>
<td>• स्थिर-अस्थिर</td>
</tr>
<tr>
<td>• शुभ-अशुभ</td>
</tr>
<tr>
<td>• यश-अयश</td>
</tr>
<tr>
<td>• साता-असाता</td>
</tr>
</tbody>
</table>

<table>
<thead>
<tr>
<th>23 प्रकृतियाँ (मिथ्यादृष्टि)</th>
</tr>
</thead>
<tbody>
<tr>
<td>• उच्च गोत्र</td>
</tr>
<tr>
<td>• संस्थान-6</td>
</tr>
<tr>
<td>• संहनन-6</td>
</tr>
<tr>
<td>• विहायोगति-2</td>
</tr>
<tr>
<td>• मनुष्य-2</td>
</tr>
<tr>
<td>• सुस्वर-दुस्वर</td>
</tr>
<tr>
<td>• सुभग-दुर्भग</td>
</tr>
<tr>
<td>• आदेय-अनादेय</td>
</tr>
</tbody>
</table>
घादीणं अजहणो-णुक्कस्सो वेयणीयणामाणं।
अजहणमणुक्कस्सो, गोङे चदुधा दुधा सेसा॥ १७८ ॥

ऐर— चारों घातिया कर्मों का अजघन्य अनुभाग-बंध, वेदनीय और नामकर्म का अनुकृष्ट अनुभाग-बंध, और गोत्रकर्म का अजघन्य तथा अनुकृष्ट अनुभाग-बंध — इन सबके सादि आदिक चार-चार भेद हैं और

बाकी के चारों घातिया कर्मों के अजघन्य के बिना तीन भेद, वेदनीय तथा नाम के अनुकृष्ट के सिवाय तीन भेद, गोत्रकर्म के अजघन्य तथा अनुकृष्ट के बिना दो भेद — इन सबके सादि और अधृव दो ही भेद हैं॥ १७८ ॥
<table>
<thead>
<tr>
<th></th>
<th>जघन्य</th>
<th>अजघन्य</th>
<th>उत्कृष्ट</th>
<th>अनुरूपकृष्ट</th>
</tr>
</thead>
<tbody>
<tr>
<td>4 घातिया कर्म</td>
<td>सादि, अध्रुव</td>
<td>चारों</td>
<td>सादि, अध्रुव</td>
<td>सादि, अध्रुव</td>
</tr>
<tr>
<td>वेदनीय, नाम</td>
<td>सादि, अध्रुव</td>
<td>सादि, अध्रुव</td>
<td>सादि, अध्रुव</td>
<td>चारों</td>
</tr>
<tr>
<td>गोत्र</td>
<td>सादि, अध्रुव</td>
<td>चारों</td>
<td>सादि, अध्रुव</td>
<td>चारों</td>
</tr>
<tr>
<td>आयु</td>
<td>सादि, अध्रुव</td>
<td>सादि, अध्रुव</td>
<td>सादि, अध्रुव</td>
<td>सादि, अध्रुव</td>
</tr>
</tbody>
</table>
3 घातिया कर्म

| अनादि             | • जब तक 10वें गुणस्थान प्राप्त नहीं होता, तब तक इनका अजघन्य अनुभाग-बंध अनादि रहता है। |
| सादि             | • 11वें गुणस्थान से उतरकर 10वें अथवा चतुर्थ गुणस्थान में जब घातिया का बंध प्रारंभ होता है, तब अजघन्य का सादि बंध होता है। |
| ध्रुव             | • अभ्य जीव की अपेक्षा कभी अजघन्य बंध का अंत नहीं आता, अतः ध्रुव बंध है। |
| अध्रुव             | • 10वें गुणस्थान में जब अजघन्य बंध समाप्त होकर जगन्य बंध होता है, तब अजघन्य का अध्रुव बंध कहलाता है। |

इनका जघन्य अनुभाग-बंध 10वें गुणस्थान में होता है, अतः इनका अजघन्य बंध चार प्रकार का होता है।
इसी प्रकार मोहनीय कर्म का भी जानना चाहिए। पर उसका जघन्य अनुभाग-बंध 9वें गुणस्थान में होता है, इतना विशेष है।

इसी प्रकार चूंकि वेदनीय, नाम का उत्कृष्ट अनुभाग-बंध 10वें गुणस्थान में होता है, अतः अनुत्कृष्ट बंध चार प्रकार का होता है।
गोत्र कर्म के अजघन्य, अनुत्कृष्ट के 4-4 प्रकार

गोत्र कर्म का उत्कृष्ट अनुभाग-बंध 10वें गुणस्थान में होता है, अतः अनुत्कृष्ट बंध चार प्रकार का होता है।

गोत्र कर्म का जघन्य बंध विशिष्ट अवस्था में ही होता है। 7वीं पृथ्वी का नारकी जो उपशम समयक्त के सम्मुख है, वही गोत्र कर्म का जघन्य बंध करता है। इस अवस्था के पूर्व गोत्र कर्म का अजघन्य बंध अनादि है।

जघन्य बंध होने पर अजघन्य बंध अध्रुव है।

जघन्य बंध करके पुनः मिथ्यात्व को प्राप्त करके नीच गोत्र का बंध होने पर अजघन्य बंध सादि है।

अभ्यं की अपेक्षा कभी नष्ट नहीं होता, अतः अजघन्य बंध ध्रुव है।
सत्यां धुवियाणम-पुक्ककस्मसत्थगाण धुवियाणं ।
अजहणं च य चदुंधा, सैसा सैसाणयं च दुधा ॥ 179 ॥

अर्थ— ध्रुव प्रकृतियों में तेजस आदि आठ शुभ प्रकृतियों के
अनुकृष्ट अनुभाग-बंध के, मतिज्ञानावरणादि अशुभ ध्रुव
प्रकृतियों के अजघन्य अनुभाग-बंध के सादि आदिक चारों भेद
हैं।

ध्रुव प्रकृतियों के जघन्यादि तीन भेद तथा 73 अध्रुव प्रकृतियों
के जघन्यादि चारों भेद — इन सबके सादि और अध्रुव ये दो
ही भेद हैं ॥ 179 ॥
नियम

जिन प्रकृतियों का जमघ अनुभाग-बंध विशेष गुणस्थान में होता है और,

जो ध्रुव-बंधी प्रकृति है,

उनका अजमघन्य बंध चार प्रकार का होता है।

जिन प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभाग-बंध गुणस्थान विशेष में होता है और,

जो ध्रुव-बंधी प्रकृति है,

उनका अनुतक्रम अनुभाग-बंध चार प्रकार का होता है।
उत्तर प्रकृतियों में जघन्य-अजघन्य आदि भेद

<table>
<thead>
<tr>
<th>धुव-बंधी प्रकृतियों में</th>
<th>जघन्य</th>
<th>अजघन्य</th>
<th>उत्कृष्ट</th>
<th>अनुत्कृष्ट</th>
</tr>
</thead>
<tbody>
<tr>
<td>तेजस-2</td>
<td>2</td>
<td>2</td>
<td>2</td>
<td>4</td>
</tr>
<tr>
<td>अगुरुलघु, निर्माण प्रश्नस्त वर्णदि-4</td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
</tr>
<tr>
<td>ज्ञानावरण - 5</td>
<td>2</td>
<td>4</td>
<td>2</td>
<td>2</td>
</tr>
<tr>
<td>दर्शनावरण - 9</td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
</tr>
<tr>
<td>अन्तराय - 5</td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
</tr>
<tr>
<td>मिथ्यात्व - 1</td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
</tr>
<tr>
<td>कषाय - 16</td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
</tr>
<tr>
<td>भय-जुगुप्ता - 2</td>
<td>2</td>
<td>2</td>
<td>2</td>
<td>2</td>
</tr>
<tr>
<td>उपघात अप्रशस्त वर्णदि - 4</td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
</tr>
</tbody>
</table>

सती य लदादारुः अद्वीतेलोकपहुँ घादीणं।
दारुअण्टिमभागोत्ति देसघादी तदो सवृंं || 180 ||

⇒अर्थ— घातिया करमों की फल देने की शक्ति लता, दारु,
अस्थि और शैल के समान समझना। अर्थात् इनमें जैसा क्रम
से अधिक-अधिक कठोरपना है वैसा ही अनुभाग में भी
sमझना।
⇒लता से दारु भाग के अन्ततः भाग तक शक्तिरूप स्पर्श्चक
देशघाती हैं और
⇒शेष बहुभाग से लेकर शैलभाग तक के स्पर्श्चक सर्वघाती हैं ||
180 ||
स्पर्धक

वर्गणाओं के समूह को स्पर्धक कहते हैं।

स्थिति की अपेक्षा निषेक संज्ञा होती है और अनुभाग को बताने के लिए स्पर्धक संज्ञा है।
घातिया कर्मों का अनुभाग

जागन्न्य

लुता दारू अस्थि शैल

उत्कृष्ट

जैसे इनमें उत्तरोत्तर अधिक-अधिक कठोरता पायी जाती है, उसी प्रकार घातिया कर्मों के अनुभाग अर्थात् फल देने की शक्ति इन-इन स्पर्धकों में अधिक-अधिक पायी जाती है।

लुता
- बेल

दारू
- काण्ठ, लकड़ी

अस्थि
- हड्डी

शैल
- पापाण, पवेंत
घातिया कर्मों की अनुभाग-शक्ति दो प्रकार की है-

**सर्वघाती**
- आत्मा के गुण का पूर्णरूप से घात करने वाला।

**देशघाती**
- आत्मा के गुण का एकदेशरूप से घात करने वाला।

सोई लतारूप स्पर्धक देशघाती होते हैं।
दारु के अनंतवें भाग स्पर्धक देशघाती होते हैं।
दारु के अनंत बहुभाग स्पर्धक सर्वघाती होते हैं।
अस्थि और शैल स्पर्धक सर्वघाती होते हैं।
देसोति हवे सम्मं तत्रो दारूअण्तिम्ये मिस्सं ।
सेसा अण्तत्मागा, अट्टिसिलाफडढया मिच्छे ॥ १८१ ॥

अर्थ— मिथ्यात्व प्रकृति के लता भाग से दारू भाग के अनंतेवें भाग तक देशधाती स्पर्शक सम्यक्त्र प्रकृति के हैं ।
दारूभाग के अनंत बहुभाग के अनंतेवें भागप्रमाण जुंदी जाति के ही सर्वधातिया स्पर्शक मिश्र प्रकृति के जानना ।
शेष अनंत बहुभाग तथा अस्थिभाग, शैलभागरूप स्पर्शक मिथ्यात्व प्रकृति के होते हैं ॥ १८१ ॥
<table>
<thead>
<tr>
<th>लता भाग</th>
<th>सम्यक्त्र प्रकृति</th>
</tr>
</thead>
<tbody>
<tr>
<td>दारु का अनंतवाँ भाग</td>
<td>त्रुण प्रकृति</td>
</tr>
<tr>
<td>दारु का अगला अनंतवाँ भाग</td>
<td>मिथ्यात्व प्रकृति</td>
</tr>
<tr>
<td>दारु का शेष अनंत अनुभाग तथा अरिश, शैल</td>
<td>मिथ्यात्व प्रकृति</td>
</tr>
</tbody>
</table>

यह ही एक प्रकृति है, जिसमें भिन-भिन्न अनुभाग के कारण प्रकृतियों के नाम बदल जाते हैं।

अन्य किसी प्रकृति में अनुभाग बदलने से प्रकृति का नाम नहीं बदला है।
अर्थ— आवरणों में देशघाती की 7 प्रकृतियाँ (4 ज्ञानावरण, 3 दर्शनावरण), अंतराय 5, संज्वलन 4 और पुरुषवेद – ये 17 प्रकृतियाँ शैल आदिक चारों तरह के भावरूप परिणमन करती हैं और
बाकी सब प्रकृतियों के शैल आदि तीन तरह के परिणमन होते हैं, केवल लतारूप परिणमन नहीं होता।
### अनुभाग के प्रकार

<table>
<thead>
<tr>
<th>प्रकृतियाँ</th>
<th>लता, दारु, अरिथ, शैल</th>
<th>लता, दारु, अरिथ</th>
<th>लता, दारु</th>
<th>लता</th>
</tr>
</thead>
<tbody>
<tr>
<td>देशघाती ज्ञानावरण-4, देशघाती दर्शनावरण-3, संज्वलन-4, पुरुषवेद, अरिथनावरण</td>
<td>✓</td>
<td>✓</td>
<td>✓</td>
<td>✓</td>
</tr>
<tr>
<td>सर्वघाती केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण 5 निद्राएँ</td>
<td>दारु, अरिथ, शैल</td>
<td>दारु, अरिथ</td>
<td>दारु</td>
<td>×</td>
</tr>
<tr>
<td>12 कषाय</td>
<td>✓</td>
<td>✓</td>
<td>✓</td>
<td>×</td>
</tr>
<tr>
<td>8 लोकषाय</td>
<td>✓</td>
<td>✓</td>
<td>✓</td>
<td>×</td>
</tr>
</tbody>
</table>

क्या मिथ्याल्व अन्य सर्वघाती के साथ ले सकते हैं? हाँ, उसके जैसा ही है।
अवसेसा पयदिओ, अघादिया घादियाण पडिभागा।
ता एव पुण्णपावा, सेसा पावा मुणेयव्वा। ॥ १८३ ॥

अर्थ— शेष अघातिया कर्मों की प्रकृतियाँ घातिया कर्मों की
तरह प्रतिभागसहित जाननी अर्थात् रीन भावरूप परिणामती हैं
और
वेही पुण्यरूप तथा पापरूप होती हैं। तथा
बाकी बची घातिया कर्मों की सब प्रकृतियाँ पापरूप ही हैं। ॥
१८३ ॥
अघातिया कर्म की प्रकृतियाँ घातिया कर्म की तरह प्रतिभाग युक्त जानना।

अघातिया कर्म की प्रकृति पूण्य और पापरूप है।

घातिया कर्म की सारी प्रकृतियाँ पापरूप ही हैं।
गुडखंडसक्करामिय-सरिसा सत्था हु णिबकंजीरा।
विसहालाहलसरिसाःसत्था हु अघादिपडिभागा॥ 184॥

अर्थ— अघातिया कर्मों में प्रशस्त प्रकृतियों के शक्तिभेद गुड़, खांड, शर्करा और अमृत के समान जानने।
अप्रशस्त प्रकृतियों के नींब, कांजीर, विष, हलाहल के समान शक्तिभेद (स्पर्शक) जानना। ॥ 184॥
इस प्रकार अनुभाग-बंध का स्वरूप कहा॥
अघातिया कर्मों का अनुभाग

जैसे गुड़, खाण्ड आदि अधिक-अधिक मिष्ट हैं, वैसे इन प्रशस्त प्रकृतियों के स्पर्शक उत्तरोत्तर मिष्टरूप हैं। अर्थात् अधिक-अधिक सांसारिक सुख के कारण हैं।

जैसे निंब, कांजीर आदि उत्तरोत्तर अधिक-अधिक कड़वे हैं, अधिक-अधिक दुःखद हैं, वैसे इन अप्रशस्त प्रकृतियों के स्पर्शक उत्तरोत्तर अधिक-अधिक कड़वे हैं, अधिक-अधिक दुःख के कारण हैं।
मात्र गुड़रूप अथवा निंबरूप अनुभाग वाले स्पर्धक नहीं पाए जाते हैं।